GRT
Golden Research Thoughts
ISSN: 2231-5063 Impact Factor : 4.6052(UIF) Volume - 6 | Issue - 6 | December - 2016

"'दूसरी परम्परा की खोज' के संदर्भ में परम्परा की अवधारणा"

ओम प्रकाश बैरवा

प्रस्तावना

परम्परा किसी भी व्यक्ति, समाज और देश के सामाजिक- सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास के लिए महत्वपूर्ण होती है। इसलिए सर्वप्रथम परम्परा क्या है और वह क्यों महत्वपूर्ण होती है, इसे जानने का प्रयास करते है- एक के पीछे दूसरा, संतति, वंश-क्रम जातीय ज्ञान, तारतम्य, धर्म,मर्यादा (पर्यायवाची) अंग्रेजी भाषा में इसके लिए Tradition शब्द है जिसका तात्पर्य है- 'An inherited pattern way thought or action' अर्थात् किसी किसी विचार या कार्य का उत्तरोत्तर नमूना परम्परा कहलाता है। संस्कृत भाषा में 'परम्परा ' शब्द मुख्यत: अविच्छिन्न श्रृखंला और नियमित सिलसिले के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। इसीप्रकार अवधारणा शब्द का मुख्य अभिप्राय है- निश्चय, निर्धारण, सीमानियत करना इत्यादि। अंग्रेजी भाषा में अवधारणा के लिए 'concept' शब्द पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता है

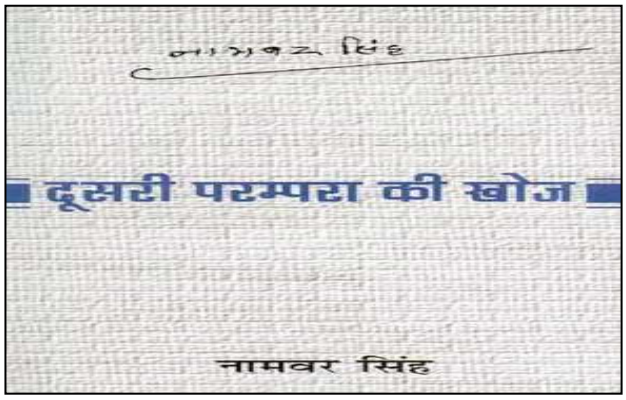

जिसका अर्थ है -'An abstract or general idea inferred or derive from specific instances. अर्थात् विशिष्ट या निर्दिष्ट उदाहरणों से प्राप्त अमूर्त या साधारण विचार अवधारणा कहलाते हैं।

सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक विकास में परम्पराएँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं, इसमें दो राय नहीं है। मगर दिलचस्प बात यह है कि साहित्य अपने स्वरूप में मौलिक होते हुए भी अपनी पूर्व-परम्परा में परिवर्तन और विकास के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करता है। हिन्दी साहित्येतिहास में परम्परा की महत्ता को रेखांकित करने का कार्य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। "साहित्य और इतिहास दृष्टि" नामक पुस्तक में मैनेजर पाण्डेय इस संबंध में लिखते हैं- आचार्य शुक्ल के सामने लगभग एक हजार वर्ष के हिन्दी साहित्य के इतिहास की विभिन्न परम्परा ओं के उदय और अस्त, परिवर्तन और प्रगति- विकास और ह्रास, निरंतरता और अंतराल तथा संघर्ष और सामाजस्य का मूल्यांकन करने और अपने समय की रचनाशीलता के विकास के संदर्भ में प्रासंगिक परम्परा ओं को रेखांकित करने का महत्वपूर्ण दायित्व था।"[1]

परम्परा के महत्वपूर्ण योगदान को उल्लेखित करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के परम्परा के अध्ययन पर जोर के विषय में लिखते हैं- " कवि को पूर्ववर्ती और

1. साहित्य और इतिहास दृष्टि : मैनेजर पाण्डेय , पृ .120

समसामयिक कवियों की तुलना में रखकर देखने का अर्थ है कि हम मानते हैं कि संसार में कोई घटना अपने आप में स्वतंत्र नहीं है। पूर्ववर्ती और पार्श्ववर्ती घटनाएँ वर्तमान घटनाओं को रूप देती रहती हैं, इसलिए जिस किसी रचना या वक्तव्य वस्तु का हमें स्वरूप निर्णय करना हो उसे पूर्ववर्ती और पार्श्ववर्ती घटनाओं की अपेक्षा में देखना चाहिए।"[2]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि परम्परा किस प्रकार और क्यों किसी भी साहित्येतिहास के लिए न केवल आवश्यक बल्कि महत्वपूर्ण है। शायद यही वजह रही होगी जिसके जिग्यासापूरक नामवर सिंह को 'दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक लिखने की जरूरत महसूस हुई। वैसे भी किसी समस्या को लेकर लिखने की बौद्धिक विवशता या दबाव इन तमाम लेखों और 'दूसरी

परम्परा की खोज' के मूल में है। 'दूसरी परम्परा की खोज' 'आकाशधर्मी' गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रति श्रद्धांजलि है।"[3]

'दूसरी परम्परा की खोज' का प्रकाशन कविता के नए प्रतिमान के चौदह वर्षों के बाद 1962 ई. में हुआ। साथ ही यह नामवर सिंह की पहली कृति है जो व्यक्ति केन्द्रित अर्थात् यह हजारी प्रसाद द्विवेदी के रचनात्मक एवं वैचारिक अवदान को दृष्टि में रखकर लिखी हुई पुस्तक है। ऐसा अधिकांश आलोचक और साहित्यिक पाठक वर्ग मानता है।

जबकि नामवर सिंह पुस्तक की भूमिका लिखते हैं कि- "इसमें न पण्डितजी की कृतियों की आलोचना है, न मूल्यांकन का प्रयास। अगर कुछ है तो बदल देनेवाली उस दृष्टि के उन्मेष की खोज, जिसमें एक तेजस्वी परम्परा बिजली की तरह कौंध गयी थी। उस कौंध को अपने अंदर से गुजरते हुए जिस तरह मैंने महसूस किया, उसी को पकड़ने की कोशिश की हैं।"[4]

साथ ही नामवर सिंह इस आशंका से परिचित थे कि परम्परा की खोज के प्रयास को सम्प्रदाय- निर्माण की संज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है। भूमिका में वे लिखते है-"शायद यह स्पष्ट करना जरूरी हो कि यह प्रयास परम्परा की खोज का ही है, सम्प्रदाय-निर्माण का नहीं। पण्डितजी स्वंय सम्प्रदाय-निर्माण के विरुद्ध थे। यदि"सम्प्रदाय का मूल अर्थ है गुरु-परम्परा से प्राप्त आचार-विचारों का सरंक्षण तो पण्डितजी के विचारों के अविकृत सरंक्षण के लिए मेरी क्या किसी की भी आवश्यकता नहीं हैं।"[5]

2.हिन्दी आलोचना : विश्वनाथ त्रिपाठी
3.
4.
5. दूसरी परम्परा की खोज: नामवर सिंह पृ.07

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि दूसरी परम्परा की खोज पुस्तक के लिखने का उद्येश्यकहीं भी नामवर सिंह का आचार्य शुक्ल के बरक्स आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी साहित्य जगत में स्थापित और प्रसिद्ध करना नहीं है। फिर 'दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक के शीर्षक में 'दूसरी' शब्द से उनका क्या आशाय इसे लेकर सहज ही एक जिज्ञासा पैदा होती है। और शायद 'दूसरी' शब्द के कारण ही आलोचकों में इसे शुक्ल विरोधी समझ लेना सवाभिक है। इस सम्बन्ध में नामवर सिंह, डॉ. किरण सिंह से एक साक्षात्कार में कहते हैं -"एक लंबे अरसे से चाहे वो प्रगतिशील लोग हो, भारतीय परम्परा , हमारी परम्परा , परम्परा और आधुनिकता की माला जपते थे और वह भी इस तरह मानो समूची परम्परा में हम लोग मानकर चलते थे कि परम्परा इकहरी चीज है। यहाँ यह जोर (देकर कहना) देना बहुत जरुरी था कि परम्परा एक नहीं होती, परम्परा एँ होती है। इसलिए मुख्य उद्येश्य दूसरी परम्परा के द्वारा अन्य परम्पराओं को देखना है। यहाँ महत्वपूर्ण शब्द दूसरी है, दूसरी का अर्थ -सेकंड नहीं है, दूसरी का अर्थ है'और' 'अन्य' यानी एक के अलावा अन्य भी है और अन्य कई धाराएँ है।"[7]

सपष्ट है कि हिन्दी साहित्य में कोई एक परम्परा नहीं है। भारतीय धर्म में, दर्शन में, चिंतन में और आलोचना में एक परम्परा नहीं है। इतना ही नहीं भारतीय राजनीति में भी एक धारा या परम्परा नहीं है। अब सवाल यह है कि पूर्व प्रचलित परम्परा से ही दूसरी परम्परा निकली है? और विकसित हुई है? या उसका कोई और स्रोत है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी उसी प्रचलित परम्परा को विकसित और संवर्धन का काम करते है जिसे आचार्य शुक्ल अपने साहित्य लेखन से करते दिखलाई पड़ते है। इस संबंध में नामवर सिंह 'दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक के प्रथम अध्याय में ही स्पष्ट करते है कि स्वंय हजारी प्रसाद द्विवेदी भी परम्परा को अखण्ड और विशुद्ध समझते थे। उनकी यह धारणा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सानिध्य सवरूप विचिछन्न होती है। 'एक विधवा द्वारा अपनी कन्या का विवाह हिन्दू रीति-नीति से करने की आकांक्षा' के उदाहरण से नामवर सिंह लिखते हैं- " क्या पूर्वपक्ष के वे ऋषि कुछ कम पूज्य है जिनका खण्डन उत्तरपक्ष में किया गया है? इस प्रश्न ने पण्डितजी को झकझोर कर राख दिया। परम्परा क्या

उत्तरपक्ष ही है? पूर्वपक्ष नहीं? जिस परम्परा को अब तक वे अखण्ड समझते आ रहे थे, देखते-देखते शिवधनुष के समान खण्ड-खण्ड हो गई। लगा कि परम्परा और भी हो सकती है।"[8]

---

6. दूसरी परम्परा की खोज: नामवर सिंह पृ.08
7.
8.

इतना ही नही आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के आर्येतर जातियों के कलात्मक अवदान खोज, सूर, कबीर और कालिदास के लालित्य में रूचि जाग्रत करने का श्रेय नामवर सिंह लिखते है कि -द्विवेदी जी को भारतीय संस्कृति और साहित्य की परम्परा रवीन्द्रनाथ के माध्यम से मिली। द्विवेदी जी ने कम-से-कम हिन्दी को रवीन्द्रनाथ की प्रेरणा से वह दिया जो उनसे पहले किसी ने न दिया था। मिसाल के लिए कबीर का क्रांतिकारी रूप। कबीर के माध्यम से जाति-धर्म- निरपेक्ष मानव की प्रतिष्ठा का श्रेय तो द्विवेदी जी को ही है। एक प्रकार से यह दूसरी परम्परा है।"[9]

यदि नामवर सिंह के कथन को आधार बनाकर चलें तो रवीन्द्रनाथ की प्रेरणा से हजारी प्रसाद द्विवेदी जिस दूसरी (और अन्य परम्परा को विकसित और संवर्धित करते हैं। उसमें वे किन कवियों,लेखकों और साहित्य-मूल्यों तथा आदर्शों को समाहित करते हैं? हिन्दी साहित्य जगत में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को जिस प्रकार आचार्य शुक्ल को तुलसीदास के साथ जोड़कर देखा समझा और पढा जाता है वैसे ही द्विवेदी जी को कबीर दास के साथ। लेकिन सच्चाई कुछ और है। नामवर सिंह लिखते हैं- "जिनके मानस में हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रतिमा कबीर के साथ एकाकार है वे शायद इन बातों से कुछ विचलित हों, किंतु इसमें आश्चर्य के लिए जगह नहीं है। सूर-साहित्य से चलकर ही द्विवेदी जी 'कबीर' तक पहुँचे थे, यह तथ्य है।"[10]

स्पष्ट है कि इस उद्धरण से एक तो 'कबीर' के माध्यम से हजारी प्रसाद द्विवेदी की हिन्दी आलोचना जगत में प्रसिद्धि और स्थापना का भ्रम टूटेगा, दूसरा यह कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्ल के तुलसी के तुलसीदास के बरक्स कबीरदास को खड़ा करते है। इस प्रकार द्विवेदी जी ने 'सूर-साहित्य' नामक अपनी कृति लिखी है, जिसमें उन्होंने प्रेम को सबसे बड़ा पुरुषार्थ माना है। नामवर सिंह लिखते है-"इस कृष्ण भक्ति में उन्हें एक नया मंत्र मिला था- प्रेम सबसे बड़ा पुरुषार्थ है: प्रेमा पुनर्थो महान्। इस मंत्र का प्रभाव था एक नया जन्म! इस मंत्र को पाकर स्वंय सूरदास एक अन्धे भिखारी से ऊपर उठकर सूरदास हो गये- सूर शूर हो गये थे।"[11]

द्विवेदीजी 'सूर -साहित्य' शीर्षक पुस्तक लिखते समय शायद ही यह समझ रहे होंगे कि भविष्य में सूर के माध्यम से कुछ लोग उन्हें जानने समझने का प्रयास करेंगे और सूर-साहित्य के विषय में प्रचलित प्रवृतियों और मूल्यों को स्पष्ट करने के लिए स्वंय उनकी ही कृतियों में उदाहरण खोजे जाएंगे। नामवर सिंह लिखते है-"शांति निकेतन आने पर रवीन्द्रनाथ से मिलने की घटना

9.दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.15
10. दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.67
11 दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.57

का जिक्र करते हुए अपने संस्मरणों में द्विवेदीजी ने एक जगह भाव-विह्वल भाषा में लिखा है:" उनके पास जाने से बराबर यह अनुभव होता था कि मैं छिन्नवृंत तूलखण्ड की भांति व्यर्थ ही इधर-उधर मारे-मारे फिरने के लिए नहीं बना हूँ।"(मृत्युंजय रवीन्द्र, पृ.07)याद करें तो यह "छिन्नवृंत तूलखण्ड" सूरदास का जहाज का पंछी ही है जिसके भटकने की पीड़ा ही उसके परम आश्रय का अर्थ सन्दर्भ है।"[12] कहने का तात्पर्य यह है कि 'दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक में नामवर सिंह कई जगह द्विवेदी जी की कृतियों के उदाहरणों के माध्यम से उनकी विचार परम्परा को स्पष्ट और सिद्ध करने की कोशिश की है जिससे की 'भूमिका' के अपने ही कथन के प्रति थोड़ी आशंका जरूर उत्पन्न हो जाती

है- " सो, कुछ 'अनपेक्षित' भले ही आ गया हो, 'अमूल' अपने जाने नही कहा हैं। इसीलिए कदम-कदम पर उद्धरण देने पड़े हैं।"[13]

द्विवेदीजी अपने चिंतन और लेखन के माध्यम से परम्परा से प्राप्त हिन्दी साहित्येतिहास की नई रूपरेखा ही प्रस्तुत नहीं करते है बल्कि साहित्य सम्बन्धी नयी मान्यताओं और साथ ही इतिहास के साथ-साथ आलोचना के नए मान भी दृष्टिगोचर होते है। दूसरी बात यह कि द्विवेदी अपने समकालीन अन्य शुक्लोत्तर आलोचकों की नहीं वे शुक्लजी के प्रभाव से ग्रस्त है और न ही उनसे डरे हुए हैं। नामवर सिंह लिखते हैं कि -"द्विवेदीजी मूलत: शुक्लजी परम्परा के आलोचक है लेकिन वे आलोचना में शुक्लजी की परम्परा को विकसित नहीं कर सके है।

शुक्लजी की परम्परा में द्विवेदीजी को शमिल करने वालों को जवाब देने के लिए नामवर सिंह बड़ें स्पष्ट ढंग़ से अपना विचार रखते है कि-"यदि द्विवेदी शुक्लजी की परम्परा के आलोचक हैं तो नन्ददुलारे वाजपेयी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि किस परम्परा के हैं जबकि वे स्वंय अपने आपको शुक्ल-पक्ष का ही मानते हैं। यदि ऐसा है तब तो यही कहना पड़ेगा कि शुक्लजी की कम-से-कम दो परम्पराएँ हैं, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि शुक्लजी में गहरे अंतर्विरोध हैं।"[14]

सूर के बाद द्विवेदीजी ने कबीरदास पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जिसके आधार पर ही हिन्दी में कबीर साहित्य की प्रतिष्ठा हुई। यद्यपि द्विवेदी जी से पहले अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने कबीर वचनावली(1916) तथा बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' (1928) शीर्षक
पुस्तक लिखी थी लेकिन जो महत्व हजारी प्रसाद द्विवेदी की कृति 'कबीर' का है, वैसा किसी का नहीं। नामवर सिंह इसके लिए "अस्वीकार के साहस' को महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि वैसा साहस कबीर में था तो वैसा साहस हजारी प्रसाद द्विवेदी में भी था। नामवर सिंह लिखते हैं-"हिन्दी में

12.दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.
13. दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.
14.

द्विवेदीजी पहले आदमी हैं जिन्होंने यह घोषणा करने का साहस किया कि 'हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्ति केवल एक ही प्रतिद्वन्दी जानता है, तुलसीदास(कबीर, पृ.222) यदि हजारीप्रसाद द्विवेदी के "कबीर दास बहुत कुछ को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे'(पृ. 07) तो 'कबीर' के हजारीप्रसाद में भी यह साहस कम नहीं है।"[15]

और कबीर की इस घर फूक मस्ती तथा फक्खड़पन की परम्परा में द्विवेदीजी 'हिन्दी साहित्य: उसका उद्भव और विकास' में बालकृष्ण शर्मा नवीन भगवती चरण वर्मा, बच्चन और दिनकर आदि को भी शामिल करते हैं। इतना ही नहीं स्वंय द्विवेदीजी भी अपने-आप को किसी फक्कड़ बाबा का चेला हुआ" मानते हैं। लेकिन नामवर सिंह फक्कड़पन के नशे को द्विवेदजी पर हावी मानते हैं और इसीलिए नामवर सिंह प्रेमचन्द में द्विवेदीजी के समानधर्मा को अप्रत्याशित रूप में देखते हैं-"फक्कड़पन का यह नशा उन दिनों द्विवेदीजी पर इस हद तक चढ़ा था कि अप्रत्याशित रूप में प्रेमचन्द में भी उन्हें अपना एक समानधर्मा दिखाई पड़ गया।"[16] साथ ही प्रेमचन्द का महत्व द्विवेदीजी की दृष्टि में में क्या था, इसकी जानकारी द्विवेदीजी की घोषणा से चलता है, नामवर सिंह लिखते हैं "वे अपने काल में समस्त उत्तरी भारत के साहित्यकार थे।..... द्विवेदीजी ही पहले आदमी हैं जिन्होंने हिन्दी जगत को यह बतलाया कि -वास्तव में तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद प्रेमचन्द के समान सरल और जोरदार हिन्दी किसी ने नहीं लिखी"[16] आगे इस परम्परा के विस्तृत रूप को स्पष्ट करते हुए नामवर सिंह लिखते है-"वस्तुत: बीसवी सदी के चौथे दशक में विद्रोह फक्कड़पन के ही किसी-न-किसी रूप को लेकर साहित्य में प्रकट हुआ था। इसका एक रूप निराला के 'कुकुरमुत्ता' (1940) के बड़बोलेपन में है तो दूसरा रूप राहुल सांकृत्यायन की 'बोल्गा से गंगा'(1942) नामक कथाकृति में है जो भरतीय इतिहास की धक्केमार क्रांति व्याख्या प्रस्तुत करती है।[17]

इसप्रकार नामवर सिंह द्विवेदीजी द्वारा शुक्लजी की कबीर की समाज-सुधारक की धारणा का खण्डन करने और उन्हें क्रांतिकारी मानने तथा जाति, कुल, धर्म, संस्कार, विश्वास, शास्त्र, सम्प्रदाय आदि के जाल को छिन्न भिन्न करके मनुष्य-मनुष्य के लिए जीने को महत्वपूर्ण मानते

15.दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.43
16. दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.49
16.
17.

हुए उसे दूसरी परम्परा के रूप में पहचानने की कोशिश करते हैं। नामवर सिंह लिखते हैं-"सारांश यह है कि द्विवेदीजी की दृष्टि में कबीर "सुधारक" नहीं बल्कि एक "क्रांत्तिकारी" थे।.....
स्पष्टत: यह क्रांतिकारी दृष्टिकोण है, जिसमें गांधीवादी 'सार-संग्रह' और 'समंवय' के सुधारवादी कार्यक्रम का विरोध निहित है। भरतीय साहित्य की यह दूसरी परम्परा है, जो काल प्रवाह में भले ही गौण हो गयी हो किंतु क्रांतिकारी परम्परा यही है; और द्विवेदीजी ने 'कबीर' के माध्यम से उस क्रांतिकारी परम्परा को पुन: उद्भासित करके ऐतिहासिक कार्य किया है।[18]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के माध्यम से नामवर सिंह हिन्दी आलोचना में हिन्दी आलोचना में हिन्दी साहित्येतिहास के उद्भव,भक्तिआंदोलन, मुस्लिम आक्रमण की प्रतिक्रिया, शास्त्र और लोक के द्वन्द और प्रगतिशील आलोचना सम्बन्धी विचार परम्परा को बड़े ही सहज और स्पष्ट ढ़ंग से रखते है। 'भारतीय साहित्य की प्राणधारा और 'लोकधर्म' शीर्षक अध्याय में नामवर सिंह सर्वप्रथम भक्ति आन्दोलन को मुसलमानों के विरूद्ध हिन्दुओं की प्रतिक्रिया करने वाली दृष्टि के विषय में लिखते है कि-"कहने की अवश्यकता नहीं कि यह इतिहास की सम्प्रदायवादी दृष्टि है।..... निस्संदेह इस सम्प्रदायवादी इतिहास दृष्टि के विरोध का श्रेय हजारीप्रसाद द्विवेदी को है जिन्होंने हिन्दी में पहले-पहल साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा फैलाये गये एक भ्रम को तोड़ने का प्रयास किया। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' इस दृष्टि से ऐतिहासिक दस्तावेज है।[19]

इसप्रकार नामवर सिंह के उपर्युक्त उद्धरण से एक तो 'भूमिका' में द्विवेदी की घोषणा-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूं कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस(हिन्दी) साहित्य जगत द्विवेदी के भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में महत्वपूर्ण कथन माना जाता है। लेकिन साथ ही उनपर यह आरोप भी लगाया जाता है कि उन्होंने शुक्लजी के विरूद्ध स्वंय को स्थापित करने के लिए यह सब किया है। यह पूर्णत: असत्य सिद्ध हो जाती है क्योंकि नामवर सिंह लिखते है कि-"प्रतिवाद के लक्ष्य के रूप में द्विवेदीजी ने शुक्लजी को नहीं, बल्कि अंग्रेज इतिहासकार हेवेल को चुना है।"[20]

इतना ही नहीं इस समस्या पर विचार व चिंतन करते हुए आचार्य शुक्ल के प्रति अत्यधिक आदर रखने वाले डॉ. रामविलास शर्मा भी 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना'(1955)

18..
19.दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.71
20. .दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.71

नामक पुस्तक में शुक्लजी की धारणा को गलत मानते हुए द्विवेदी जी की परम्परा को ही समृद्ध करते दिखलाई पड़ते है। नामवर सिंह लिखते हैं कि- आचार्य शुक्ल के प्रति आदर भाव डॉ रामविलास शर्मा को डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी से कम नहीं, बल्कि कुछ अधिक ही है और तुलना के लिए द्विवेदीजी सामने हों तो और भी अधिक है। फिर भी.....उन्होंने .....लिखा है: शुक्लजी का विचार था कि यह निराशा और उदासी मुस्लिम शासन के कारण थी। देश में 'विदेशी जातियों का आक्रमण और उनका शासन भी एक कारण था। लेकिन वास्तविकता यह है कि सत्ता में सहायक और भाग लेनेवाले देशी सामंत भी थे, उन सामंतो के देशी सहायक पण्डे और पुरोहित भी थे। स्वंय

शुक्लजी ने दरबारी कवियों को जो चुन-चुन कर सुनाई है, उससे स्पष्ट है कि उनकी सहानुभूति देश रक्षा के ठेकेदारों के साथ न थी। फिर भी उअनके विवेचन में देशी सामंतों की भूमिका हर जगह स्पष्ट नहीं है, इसलिए उन्होंने निराशा का कारण मुस्लिम शसन बताया है।"(पृ..84-85, जोर मेरा) [21]

'दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक अपनी कई स्थापनाओं और धारणाओं के कारण महत्वपूर्ण है। आज दलित और गैर-दलित साहित्य विमर्श के बढ़ते वर्चस्व के संदर्भ में भी यह एक नई दृष्टि हमारे सामने रखती है। भक्ति आन्दोलन के अंतर्विरोधों की चर्चा करते हुए मुक्तिबोध मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का 'एक पहलू' शीर्षक निबन्ध में मुख्य स्थापना यह करते है कि "निचली जातियों के बीच से पैदा होनेवाले संतों के द्वारा निर्गुण भक्ति के रूप में भक्ति आन्दोलन एक क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में पैदा हुआ किंतु आगे चलकर ऊँची जातिवालों ने इसकी शक्ति को पहचानकर इसे अपनाया और क्रमश: उसे अपने विचारों के अनुरूप ढ़ालकर कृष्ण और राम की सगुण भक्ति का रूप दे डाला जिससे उसके क्रांतिकारी दाँत उखाड़ लिए गए।"[22] स्पष्ट है कि निम्नजातियों द्वारा सृजित भक्ति आन्दोलन की शक्ति को देखते हुए अवसरवादी उच्चवर्गीय जातियों ने इसे अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। इसीप्रकार निम्न और दलित जातियों के दु:ख दर्दों और पीड़ा को साहित्य चिंतन का विषय बनाने वाले दलित लेखकों के संघर्ष और दलित साहित्य की शक्ति और महत्ता को अपने अधिकार क्षेत्र में लेने के लिए फिर से इन अवसरवादी जातियों ने कोई चूक नहीं की। अपनी स्वार्थपरता पर पर्दा डालने के लिए इसे सहानुभूति बनाम स्वानुभूति का रूप दे दिया।

हिन्दी साहित्य में भारतीय संस्कृति और सौन्दर्य के प्रतिमानों तथा उसकी स्गुद्धता को लेकर गहरा मतभेद है। संस्कृति और सौन्दर्य पर गहन अध्ययन और विश्लेषण करने वाले साहित्यकार

21.

22

23.. दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.85-86

व आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी है। इसीलिए डॉ. नामवर सिंह द्विवेदी के 'अशोक के फूल' को केवल एक फूल की कहानी नहीं, भरतीय संस्कृति का एक अध्याय मानते है। नामवर सिंह लिखते हैं-"यह निबन्ध द्विवेदीजी के शुद्ध पुष्प-प्रेम का प्रमाण नहीं, बल्कि संस्कृति-दृष्टि का अनूठा दस्तावेज जै।"[23]

इस प्रकार संस्कृति सम्बन्धी विचार-परम्परा के संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह दिनकर की "मिश्र संस्कृति" और अज्ञेय की "संस्कृति की संग्रहकता" के बरक्स द्विवेदी संस्कृति में "त्याग" की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते है। इतना ही नहीं भारतीय साहित्य, संस्कृति और सभ्यता के बरक्स यूरोपीय मतों और सिद्धांतों को हीनतर सिद्ध करने के लिए भारतीय आचार्य विशेष का मत उद्धत करने और आत्मगौरव के उल्लास की प्रवृत्ति को गलत माना है। नमवर सिंह का मानना है कि पण्डितों की एकांगी समझ द्विवेदी की दृष्टि में बाधा है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में आर्येतर जातियों के योगदान से आर्य-श्रेष्ठता के अहं को चोट लगने पर भी द्विवेदीजी कतई चिंतित नहीं है। क्योंकि-" यह दूसरी परम्परा की खोज का प्रयास है जिसका प्रयोजन मुख्यत: पण्डितों की इकहरी परम्परा की संकीर्णता का निर्देशन है।"[24]

भारतीय और अभारतीय के द्वंद्व तथा आर्येतर और आर्य संस्कृति के कला व मूल्यों के संदर्भ में एक परम्परा द्विवेदी जी से पहले छायावादी कवि-लेखक जयशंकर प्रसाद से मिलती है। इस प्रकार हमारी परम्परा में जो भी सुन्दर प्रसाद और द्विवेदी जी दोनों आर्येतर जातियों के अवदान को स्वीकरते हैं। नामवर सिंह लिखते हैं -" एक की परम्परा और दूसरे की प्रति-परम्परा दो दिशाओं से चलकर एक ही बिंदु पर मिलती है-थोथे नैतिकतावाद के विरूद्ध 'सुन्दर' की प्रतिष्ठा।"[25] और सौन्दर्य की यह परम्परा 'मेघदूत- एक पुरानी कहानी'(1957) में द्विवेदीजी के 'कालिदास' का सौन्दर्य से निकलकर अनजाने ही निराला की 'श्याम तन झर बंधा यौवन' वाली 'वह तोड़ती पत्थर' दो जुड़ जाती है। अत: आधुनिक युग में इसका विस्तार निराला तक है।

साहित्य जगत में अनेक लेखक व साहित्यकार साहित्य विधाओं के भिन्न-भिन्न रूपों में छद्म नाम से लेखन करते रहे है। नामवर सिंह का इस विषय में मानना है कि"कला-सृजन में निर्वैयक्तिक होने के लिए कलाकार 'मास्क' या मुखौटा का प्रयोग करता है।"[26] जबकि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, हजारीप्रसाद द्विवेदी से 'व्योमकेश शास्त्री' के रूप में

छद्म नाम रखने पर कहते है-"जब किसी की प्रतिकूल आलोचना करनी हो तो नाम मत छिपाया करो। नाम छिपाना भी सत्य को छिपाना ही है।"[27]

---

24. दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.89
25 दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.91
26
27..

इस प्रकार तटस्थ या निर्वैयक्तिक होने का मतलब अपने भावों और विचारों को मुखौटा या छद्म नाम देना कतई ठीक नहीं है। यही वजह है कि आज आत्मकथा जैसी नितांत वैयक्तिक विधाएँ भी इस समस्या से परे नहीं है। कहने का आशाय यह है कि स्वंय को कामुक और लम्पट कहने वाले गाँधी जी 'सत्य के प्रयोग' में इस समस्या से उभरे हुए दिखलाई पड़ते है।

खैर, नामवर सिंह आत्मावेदना और आत्मोपहास की परम्परा की कड़ीमें द्विवेदी जी को जोड़ते हुए 'भूमिका' के उदाहरण के माध्यम से लिखते है-" "अपनी सीमाओं. त्रुटियों, ओछाइयों को छिपाकर अपने को कुछ इस ढ़ंग से छिपाना कि मैं सचमूच कुछ हूँ, यही तो किया है।..... तुलसीदास ने मेरे जैसे ही किसी को देखकर कहा होगा- 'कउ नल कहऊ, देउ कछु असि वासना न मन तै जाईं।'आगे निष्कर्ष रूप में नामवर सिंह लिखते है- साहित्य में आत्मवेदना का ऐसा अनावृत स्वर तुलसी और शायद निराला के बाद यहीं सुनने को मिलता है।[28]

ऐसे ही एक अन्य प्रसंग में जबर्दस्ती घसीटकर हजारी प्रसाद द्विवेदी के मानववाद को यूरोप के मांतेन के मानववाद से जोड़ देना है-"फिर भी मांतेन के उस मानववाद से द्विवेदीजी के मानववाद का कुछ रिश्ता तो है ही जो भारत के विवाद-संकल्प चौथे -पाँचवे दशक को देखते हुए नितांत दुर्लभ किंतु बहुत राहत देने वाला है।[29]

हिन्दी साहित्येतिहास और परम्परा के गहन और विस्तृत अध्ययन-विश्लेषण के अभाव में किसी निष्कर्ष पर पहुँचना बेमानी है।किंतु 'दूसरी परम्परा की खोज' के संदर्भ परंपरा विषयक मान्यताओं और अवधारणाओं की समग्र व्याख्या-विश्लेषण के आधार पर तो इतना कहा जा सकता है किआचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हाशिए पर खड़े हुए, उपेक्षित और अनपेक्षित साहित्य साधकों को मुख्यधारा या पूर्व-पक्ष की परम्परा में स्थान दिलाने के लिए एक युगांतकारी कार्य कियाहै। प्रो. निर्मला जैन 'दूसरी परम्परा की खोज' पुस्तक के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखती है कि -"उसमें कुछ ऐसी अवधारणाओं के परम्परागत मूल का अप्रश्न उठाया गया है जिन्हें बड़ी सुविधा से परिचय की देन स्वीकार करके उनके पारम्परिक मूल विशेष आग्रहों के तहत खोज कर निश्चित कर दिए गये।..... इसे हिन्दी के दो आलोचकों की तकराहट का रूप देना मूल प्रश्न से मुँह चुराना होगा।"[30]

---

28. दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.89
29 दूसरी परम्परा की खोज : नामवर सिंह, पृ.91
30.हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी : निर्मला जैन, पृ.82

'सन्दर्भ ग्रंथ'

आधार पुस्तक- दूसरी परंपरा की खोज: नामवर सिंह
तीसरी आवृति:2005
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1.बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली-110062

सहायक पुस्तकें ------

1. साहित्य और इतिहास दृष्टि : मैनेजर पाण्डेय
आवृति संस्करण -2009
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन
21-ए,दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

2. हिन्दी आलोचना : विश्वनाथ त्रिपाठी
आवृति तेरहवी-2013
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

3. हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी : निर्मला जैन
आवृति पाँचवी -2011
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

4. समीक्षक नामवर सिंह: किरन सिंह
प्रथम संस्करण2004
प्रकाशक: नमन प्रकाशन
4378/4B अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

ओम प्रकाश बैरवा